अपने ही निर्णयों की समीक्षा करता उच्चतम न्यायालय

हाल ही में उच्चतम न्यायालय की दो जजों की बेंच ने न्यायालय के अपने ही निर्णयों पर पनुर्विचार और उन्हें पलटे जाने पर दुख व्यक्त किया है। न्यायालय की अपने ही निर्णयों की समीक्षा किए जाने की यह प्रवृत्ति बिल्कुल सही है। ऐसा किया ही जाना चाहिए। क्यों -

- संविधान का अनुच्छेद 141 न्यायालयों को ऐसा करने की अनुमति देता है।

- कभी-कभी न्यायालय के निर्णय भी जनहित में नहीं होते। इनकी समीक्षा से न्याय का उद्देश्य पूर्ण होता है। उदाहरण के लिए, यदि मौलिक अधिकारों का मामला लें, तो 1976 में एडीएम जबलपुर मामले में, उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया था कि आपातकाल की घोषणा से जीवन के सभी अधिकार स्थगित हो जाते हैं। इसके बाद न्यायालधीश चंद्रचूड और पी.एन. भगवती ने मौलिक अधिकारों को बनाए रखने की बात की। उन्होंने जीवन के अधिकार को सशक्त किया और इसके दायरे में सम्मान को भी शामिल किया। 2017 में पुट्टास्वामी मामले में जीवन के मौलिक अधिकार के एडीएम जबलपुर के निर्णय को पलट दिया गया।

- इसी प्रकार से 377 का मामला है। भारतीय न्याय संहिता की धारा में समलैंगिक यौन संबंधों को अपराध माना गया है। 2013 के सुरेश कुमार कौशल मामले में इसे अपराध ही माना गया था। लेकिन पांच वर्ष बाद उच्चतम न्यायालय ने इसे अपराध की श्रेणी से बाहर कर दिया।

निजता का अधिकार और समलैंगिकता को अपराध की श्रेणी से बाहर निकालने वाले दो निर्णय ऐसे विशेष हैं, जो बताते हैं कि मौलिक अधिकारों को लगातार बदलते सामाजिक नियमों के परिपेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। समीक्षा तो किसी संस्था की ताकत की निशानी है। अतः इसे बनाए रखा जाना चाहिए।

'द टाइम्स ऑफ इंडिया' में प्रकाशित धनंजय महापात्र के लेख पर आधारित। 28 नवंबर, 2025